आखर हिंदी पत्रिका ; e-ISSN-2583-0597 खंड 3/अंक 5/दिसंबर 2023
Received: 03/12/2023; Accepted: 14/12/2023; Published: 26/12/2023

लेख

हिंदी तथा कन्नड़ काव्य में स्त्री चिंतन

डॉ नागरत्ना एन राव
एसोसिएट प्रोफेसर
विश्वविद्यालय कॉलेज मंगलौर

डॉ नागरत्ना एन राव, **हिंदी तथा कन्नड़ काव्य में स्त्री चिंतन**, आखर हिंदी पत्रिका, खंड 3/अंक 5/दिसंबर 2023,(538-543)

कविता ,कवि की भावनाओं की सुन्दर एवं सार्थक अभिव्यक्ति है। कवि हर छोटे -बड़े भावों को नवीन रूप से व्याख्यायित करता है। मानव में संवेदनशीलता जगाना ही उसका प्रमुख उद्देश्य होता है और ऐसा करने में वह समर्थ भी होता है। तभी तो यह उक्ति प्रसिद्द है -" जहाँ न पहुंचे रवि वहां पहुंचे कवि " अर्थात कवि नारी - मन की भावनाओं को बखूबी परखना जानता है। तभी जिस भावना पर स्वयं नारी ने कभी ध्यान नहीं दिया उस पर कवि अवश्य रौशनी डाल देता है। कवि अपनी रचनाओं के माध्यम से सामजिक सच्चाई को उसके यथार्थ रूप में व्यक्त कर उसमें अन्तर्निहित विविध विषयों को प्रतिपादित करता है। कई कवयित्रियों ने अपनी कविताओं के माध्यम से बड़ी सूक्ष्मता से स्त्री -जीवन की विभिन्न चिंताओं ,सरोकारों ,सन्दर्भों को अपनी अनुभूति से प्रस्फुटित किया। इससे पुरुषसत्तात्मक सोच और समाज में स्त्री के साथ होने वाले दोयम दर्जे के व्यवहार को अभिव्यक्त करता है। इनमें स्त्री का अपने प्रति हो रहे व्यवहार का प्रतिरोध नज़र आता है। स्त्रियां सिर्फ इतना चाहती है कि उन्हें एक "स्त्री "के रूप में नहीं बल्कि एक मानव के रूप में देखा जाए।

"स्त्री " का तात्पर्य है -सौंदर्य ,कोमलता , चंचलता ,सौम्यता आदि। स्त्री की तुलना प्रकृति या भूमि से की जाती है। स्त्री ,सम्पूर्ण मानव -समाज का निर्माण करती है , उसका लालन -पालन अपने हाथों से करती है। लेकिन विडम्बना यह है कि जिन हाथों से स्त्री एक संसार संवारती है उसे अपने ही अस्तित्व और अस्मिता के लिए संघर्ष करना पड़ता है। जन्म से लेकर मृत्यु तक उसकी जीवन गाथा चुनौतीपूर्ण है। स्त्री - जीवन के इन्ही संघर्षपूर्ण चुनौतियों को हिंदी तथा कन्नड़ कविताओं में चित्रित किया गया है ,जिनमें से कुछ कविताओं पर हम

एक दृष्टि डालेंगे। हिंदी तथा कन्नड़ दो अलग भाषाएँ हैं किन्तु मानव -समाज की विचारधारा एक ही है। नारी - जीवन की सच्चाई को उसकी अस्मिता तथा उसके अस्तित्व के परिप्रेक्ष्य में इन दो भाषाओँ की कविताओं में देखा जा सकता है।हिंदी तथा कन्नड़ कविता में स्त्री सारा संसार " स्त्री " से ही सुन्दर बनता है। एक स्त्री ही मकान को घर बनाती है। लेकिन उसके व्यक्तिगत भावों और विचारों के बारे में कोई नहीं सोचता। जिस परिवार की रचना कर वह संबंधों का महल खड़ा करती है वहीं उसे अपनी बात कहने और मन की करने के लिए संघर्ष करना पड़ता है। उसके अस्तित्व की कोई गिनती ही नहीं। उसके प्रति रुखा व्यवहार उसे निराश कर देता है। अपने ही परिवार में नारी को दो स्तरों पर जूझना पड़ता है -एक अपने अस्तित्व की पहचान के लिए तो दूसरा अपनी अस्मिता को बरकरार रखने के लिए। नारी एक जीव को जब जन्म देती है तो वह उसे अपनी संतान के रूप में देखती है। उसके लिंग से उसे कुछ लेना -देना नहीं होता। नारी से ही एक नारी को आकार मिलता है तो उसी से एक पुरुष भी आकार पाता है। लेकिन जिन घरों में बेटियां जन्म लेती हैं वहां के वातावरण में जैसे मनहूसियत -सी छा जाती है। यह किसी भी मानव के लिए परेशानी की बात होगी। जब किसी घर में दूसरी बार बेटी जन्म लेती है तो ऐसे घरों में तो जैसे सन्नाटा और सूनापन छा जाता है। यदि बेटा पैदा हुआ तो जश्न और हलचल मची रहती है। इस व्यवहार के लिए एक स्त्री ही मुख्य कारण होती है और यही जीवन की सबसे बड़ी विडंबना है। एक सास अपनी बहु को यह एहसास कराती है कि बेटी को जन्म देना जैसे कोई पाप हो। जन्म देने वाली मां स्त्री है तो उसकी सास या उस बच्चे की दादी या नानी भी एक स्त्री ही होती है। स्त्री होकर एक बेटी के जन्म का निराकरण बड़ा दुखदायी है। कन्नड़ की एक कविता "बहना का जन्म "में कवयित्री सविता नागभूषण ने एक ऐसी ही माँ की स्थिति का वर्णन किया है जो दूसरी बार भी एक बेटी को जन्म देती है। इस सन्दर्भ में उस बच्ची की दीदी अपने घर के निराशाजनक वातावरण का बड़ा ही हृदयद्रावक वर्णन करती है -

" न कोई हर्ष न उल्लास / घर पर छाया शोक का आभास

इच्छाओं की भांति / सूख गयी दूध छाती की

जन्म देने वाली घुट घुट कर / झूला है चढ़ा रही ,पर

हाथ खूंटे तक नहीं पहुँच पाता / तब पिता है बड़बड़ाता

अचानक ही हो गयी महँगी / बाज़ार की मिठाई

मधुर गीत जाती थी दादी /पर उसका भी गाला हो गया खराब "

बेटी के जन्म पर परिवार की ऐसी उदासीन प्रतिक्रिया देखने को मिलती है। यदि बेटे का जन्म हुआ होता तो तमाम तंगियों के बावजूद उत्सव मनाया जाता और जश्न मनाने के मौके भी ढूढ़े जाते। बेटी होने के कारण -

" न बच्चे का कोई अलंकार / न कोई दुलार

निराशा , उपेक्षा , हताशा / भला कैसे समझे छोटी बच्ची

लेकिन धीरे -धीरे से गुनगुनाती। "

एक बेटी के जन्म लेने पर सारा दोष स्त्री को ही दिया जाता है जबकि वैज्ञानिक सच्चाई कुछ और है। स्त्री अपने परिवार के लिए अपमान और उपेक्षा सहती है। जहाँ एक स्त्री दूसरी स्त्री की उपेक्षा करती है वहीँ एक स्त्री ही दूसरी स्त्री के दर्द को समझ सकती है इसलिए कवयित्री बड़े ही प्रभावशाली ढंग से वर्णन करती है कि कैसे एक बहन दूसरी बहन का सहारा बनती है –

" मुट्ठी भर की छुटकी बहन को पिद्दी - सी बड़की बहन ने

प्यार से गले लगाकर ,दिया दान अभय का। "

स्त्री अपने अस्तित्व की लड़ाई कभी मूक रहकर मौन रूप से लड़ती तो कभी आवाज़ उठाकर। हिंदी की प्रसिद्द कवयित्री अनामिकाजी का मानना है कि दुनियाभर में अब तक जितने भी आंदोलन हुए हैं ,उनमें " स्त्री - आंदोलन " बिना खून बहाए लड़ी गयी। यह सच भी है। स्त्री ने हमेशा यही कहा कि हमें "स्त्री के रूप में नहीं बल्कि एक इंसान की तरह "देखा जाए। यही भाव उनकी कविता " स्त्रियां " में अभिव्यक्त है –

" हम भी इंसान हैं / हमें कायदे से पढ़ें एक -एक अक्षर

जैसे पढ़ा होगा बी ए के बाद / नौकरी का पहला विज्ञापन

सुनें हमें अनहद की तरह / और समझो जैसे समझी जाती है

नई - नई सीखी हुइ भाषा। "

कितना सच है यह ? स्त्री के अस्तित्व को परिवार और समाज में कितना नगण्य समझा जाता है। घर के किसी भी निर्णय या स्वयं उसके जीवन के लिए भी उसे कभी सुना नहीं जाता। लेकिन ध्यान देने की बात यह है कि स्त्री को संस्कृति और संस्कारों की संवाहिका तो माना जाता है पर उसका अस्तित्व उपेक्षित ही रहता है। परिवार ,समाज और संस्कृति के नाम उसे अन्याय ,अत्याचार और असमानता की शिकार हो जाती हैं। पितृसत्तात्मक समाज में पुरुष के वर्चस्व के कारण नारी -स्वातंत्र्य सदा कुंठित होती रही है। पुरुष ने स्त्री की चुप्पी को सदा उसकी कमज़ोरी माना जबकि वह अपने संस्कारों और परिवार की मर्यादा के कारण मौन रह कर उपेक्षा और अपमाम सहती है। उसकी इस सहनशक्ति का सदा दुरुपयोग हुआ है। किसी भी घर का कोना -कोना स्वयं स्त्री

सजाती -संवारती है पर उसका अपना कुछ नहीं। न जन्म देने वाली माँ का घर उसका है और न सास का घर। लेकिन वह जहाँ रहती है ,उसे अपना घर मान लेती है। जब वह जागरूक होती है और अपने घर में अपनी जगह ढूंढती है तब उसे अपने साथ हुए दोयम दर्जे के व्यवहार का पता चलता है। इसी बात को अनामिकाजी अपनी कविता में एक माँ से कहलवाती हैं - " राम ,आ बताशा खा /राधा ,झाड़ू लगा

भैय्या अब सोयेगा ,जाकर बिस्तर बिछा

अहा , नया घर है /

राम ! देख यह तेरा कमरा है /और मेरा

ओ पगली ! लडकियां ,हवा ,धूप ,मिटटी होती हैं।

उसका कोई घर नहीं होता। "

अनामिका जी की यह कविता " बेजगह " हमें यह सोचने के लिए मजबूर करती है कि एक माँ कैसे अपने बेटे और बेटी में इतना भेदभाव रख सकती हैं। जीवन की यह कैसी विडम्बना है कि एक मकान को "घर " बनाने वाली , एक पुरुष को जन्म देने वाली ,बच्चों को संस्कार देने वाली स्त्री की अपने ही घर में कोई जगह नहीं। जबकि उसके बिना कोई घर ,घर नहीं हो सकता। इस सच्चाई को जानते हुए भी यह समाज स्त्री को " दोयम दर्जा " देता है। उसकी भूमिका को देखते हुए उसे तो प्रथम दर्जा मिलना चाहिए। आज की स्त्री "समता" चाहती है। वह स्वाधीन होकर स्वयं अपनी जगह बनाना चाहती है। निर्मला पुतुल के कविता की ये पंक्तियाँ "स्त्री - अस्मिता " की और संकेत करती हैं –

"अपनी कल्पना में हर रोज़ /एक ही समय में स्वयं को

हर बेचैन स्त्री तलाशती है / घर ,प्रेम और जाति से अलग

अपनी एक ऐसी ज़मीन /जो सिर्फ उसकी अपनी हो। "

आज सामाजिक वातावरण में जी रहे हैं उसमें यह संभव नहीं लगता। स्त्री चाहे अपनी मुक्ति के लिए कितना भी संघर्ष करे पर अंततः वह अपने पारिवारिक रिश्तों में बंध ही जाती है। वह चाहकर भी अपने इन बंधनों से अपने आप को मुक्त नहीं कर पाती। वह तो अपने परिवार के लिए किये गए कार्यों के प्रति अपनों की सहृदय संवेदना चाहती है। वह जीवन भर अपने परिवार जनों के सपनों को साकार करने में लगी रहती है तो उसे भी अपने सपनों को जीने दिया जाए। जब वह उनके सपनो के लिए कुछ भी कर सकती है तो क्या परिवार वाले

उसके सपनों को नहीं समझ सकते ?स्त्री , पुरुषों की सोच को सकारात्मक बनाना चाहती है। जिस प्रकार पुरुष अपना निर्णय लेने के लिए स्वतंत्र है और कोई भी रिश्ता उसके लिए बाधा नहीं होती उसी प्रकार एक स्त्री को स्वतंत्र निर्णय लेने और उसे करने का अधिकार होना चाहिए। जिस प्रकार पुरुष के सपनों को पूरा करने के लिए स्त्री जी -जान से काम करती है वैसे ही पुरुष भी करे। आखिर पति -पत्नी एक दूसरे के जीवन साथी हैं ,स्पर्धी नहीं। दोनों को मिलकर अपना जीवन सुन्दर बनना है ,एक दूसरे को जीतना या हराना नहीं। जिस दिन पुरुष का अहम् स्त्री की इस कामना को समझेगा उस दिन सच्चे अर्थों में पति - पत्नी सच्चे साथी होंगे। परिवार में समता भाव हो ,एक दूसरे का सम्मान हो। स्त्री -लेखन जीवन के इसी आदर्श की स्थापना करना चाहता है। यदि वह किसी बात का विरोध या विद्रोह करती है तो केवल सामनेवाले को समझाने के लिए। वह परिवार को तोड़ना या उससे अलग होना नहीं चाहती। वह परिवार के बिना कुछ नहीं और परिवार उसके बिना। सुंदर जीवन के इस सपने को कन्नड़ की कवयित्री गुलाबी बिलिमले " नारी रुपी नदी का सपना " कविता में बखूबी चित्रित करती हैं –

" मैं एक छोटी -सी नदी /शत - शताब्दियों का किनारा /मेरे दोनों छोर

किस दिशा में है बहना /कितनी ऊंचाई तक है चढ़ना /कितनी गहराई में है उतरना

कितने विस्तार तक है फैलना /ये सब तय करता है किनारा।

यह है स्त्री जीवन के आज का यथार्थ किन्तु वह इस सच्चाई को बदलना चाहती है।स्त्री जीवन की विडम्बना है कि उसे सदा संस्कारों ,रीति -रिवाज़ों के दायरे में सीमित रखा गया। उसे क्या करना है ,क्या पहनना है ,कहाँ जाना है आदि पर नज़र रखी जातीहै। वह जब अपने मन का करने जाती है तो कई बंधनों में बांधकर रख दी जाती है। वह किसी किनारे में बंधकर नहीं रहना चाहती। वह हर किनारा तोड़कर एक स्वतंत्र जीवन जीना चाहती है , वह अपनी सीमा जानती है और उसका उल्लंघन नहीं करेगी। इसलिए उसे अपना सपना पूरा करने दिया जाये। एक न एक दिन उसका यह सपना पूरा होगा , यही उसका भरोसा है इसलिए इस कविता में कवयित्री आगे कहती हैं –

"मन के किसी कोने में एक भरोसा /समय सदा ऐसा नहीं रहता

मेरे तेज से ,प्रतिघात /निरंतर आघात से/कभी न कभी तो टूटेगा किनारा

और होगा भाग्य / समुद्र बन जाने का। "

यहाँ समुद्र बनाने का तात्पर्य है असीम होना, किसी भी दायरे से परे। एक स्त्री की अपेक्षा यही है कि उसे "अबला " या " कमज़ोर " न माना जाये। इसके लिए उसे परिवार का सहयोग मिले। स्त्री को उसकी देह से परे भी सोचा जाए।

इस प्रकार स्त्री को अपने अस्तित्व और अस्मिता की लड़ाई अपने भीतर और बाहर दोनों तरफ लड़नी पड़ती है। सामान्य स्त्रियों के लिए अपने अस्तित्व और अस्मिता की की लड़ाई दुष्कर और कठिन है। वह तो सिर्फ यही बताना चाहती है कि वह कोई वस्तु या मशीन नहीं बल्कि एक जीती -जागती इंसान हैं। जिसका मन -मस्तिष्क है ,सपने और इच्छाएं हैं जिन्हें सब समझें और उसके अनुकूल व्यवहार करें ताकि वह भी अपने जीवन का आनंद उठा सके। समता -भाव की ऐसी सुन्दर जीवन की कामना ही उनका सपना है।

****